मास्टरनी

भुवनेश्वर

मास्टरनी

उस रोज सुबह से पानी बरस रहा था। साँझ तक वह पहाड़ी बस्ती एक अपार और पीले धुँधलके में डूब-सी गयी थी। छिपे हुए सुनसान रास्ते, बदनुमा खेत, छोटे-छोटे एकरस मकान - सब उस पीली धुन्ध के साथ मिलकर जैसे एकाकार हो गए थे।

औरतें घरों के दरवाजे बन्द किए सूत सुलझा रही थीं। आदमी पास के एक गाँव में गए थे। वहाँ मिशन का क्वार्टर था और एक भट्टी। वाकई, वहाँ बारिश की धीमी, एकरस और मुलायम छपाछप की कोई आवाज नहीं आ रही थी।

चार बजने से कुछ ही मिनट पहले एक कॉटेज का दरवाजा खुला। यह कॉटेज मामूली मकानों से भी नीची और छोटी थी। उसके चरमराते हुए लकड़ी के जीने से पाँच-छ: लड़के-लड़कियाँ उतर, बूढ़े किसानों की तरह झुककर, अपने बस्तों से बारिश बचाते, चुपचाप, घुमावदार रास्ते पर चलकर आँखों से ओझल हो गए। जब तक वह दिखलाई देते रहे, उनकी मास्टरनी तनी हुई चुपचाप खड़ी उसी ओर देखती रही। फिर वह दरवाजे को मजबूती और अवज्ञा से बन्द कर भीतर चली गयी।

वह एक अधेड़ ईसाई औरत थी - कठिन और गंभीर। दो साल पहले ईसाइयों के इस गाँव में आकर, एक हिन्दुस्तानी मिशनरी की मदद से, उसने यह स्कूल खोला था। इन दो सालों में उसका चेहरा और भी लम्बा, और भी पीला, और भी चिड़चिडा हो गया था। गाँव में रहते हुए भी वह गाँव से जैसे अलग थी। स्त्रियाँ उससे डरती थीं, मर्द उसको एक मर्दानी अवज्ञा से देखते थे।

आज के इतने नीले-नीले पहाड़ों और घनी धुन्ध के सामने वह काँप-सी उठी और दिन-भर अपने दोनों हाथों को बगल में इधर-उधर फिराती रहीं।

इसके बाद बस्ती फिर सुनसान हो गयी। सिर्फ एक बार मास्टरनी ने अपना द्वार खोलकर झाँका और तुरन्त ही फिर बन्द कर लिया।

करीब छ: बजे जब धुन्ध का पीलापन पहाड़ों के साथ नीला हो रहा था, आखिरकार बस्ती में एक मानव दिखाई दिया। लम्बा रोगी-सा एक सोलह-सत्रह साल का लड़का। पुराना फौजी कोट पहने था। कॉलर के बाहर उसने अपनी मैली कमीज निकाल रखी थी। कीचड़ बचाने के लिए वह सड़क के इस तरफ से उस तरफ मेढकों की तरह फुदक रहा था। लकड़ी के घुने हुए जीने पर आकर उसने संतोष की साँस ली और एक भीगे कुत्ते की तरह अपने आपको झाड़कर जीने पर चढ़ गया।

'लूसी बहन, बड़ा अँधेरा है।' पास आते ही वह चिल्ला उठा था।

'टुटू।' मास्टरनी ने अपने हाथ छोड़कर कहा और फिर धीरे-धीरे चलकर छत से टँगी हुई लालटेन जला दी। उस छोटे से गन्दे और अँधेरे कमरे में रोशनी लालटेन से खून की तरह बहने लगी।

इस बीच टुटू बारिश और रास्ते पर भुनभुनाकर अपने बड़े और भारी कोट को टाँगने की जगह खोज रहा था।

‘मैं कहता हूँ, तुम्हारे पास कोई कपड़ा है - कम्बल का टुकड़ा-उकड़ा। मैं जूते साफ करूँगा।’

मास्टरनी ने चुपचाप झुककर उसके जूते साफ कर दिए। टुटू बराबर अपने जूतों की तरफ देखता हुआ ‘नहीं-नहीं’ कर रहा था।

मास्टरनी ने वैसे ही झुके-झुके पूछा, ‘घर पर सब अच्छे हैं।’

‘मेरे पास तुम्हारे लिए सैकड़ों खत हैं, सिर्फ मुरली तुमसे खफा है। तुमने उसके मोज़े खूब बुने। वह जाड़े से नीली पड़ी जा रही है।’

उसने अपनी बहन को खत दे दिये और रोशनी के पास जाकर अपने भीगे बालों पर हाथ फेरने लगा। बीच-बीच में वह कुछ बुदबुदा उठता था। मास्टरनी पत्रों से सिर उठाकर उसकी तरफ देखती और फिर पढ़ने लग जाती थी।

अब उसने खत एक ओर रखकर इस सोलह साल के लम्बे-चिकने युवक की तरफ देखना और उसके बारे में सोचना शुरू किया। वह उसके बिलकुल बचपन के बारे में सोचने लगी। जबकि उसके गरम-मुलायम जिस्म को चिमटाकर वह एक पके हुए फल की तरह हो जाती थी।

‘तुम खत नहीं पढ़ रही हो।’ उसने सहसा घूमकर कहा।

‘पढ़ लिया, और वह फिर उसी तरह हथेलियों को बगल में भींचे इधर-उधर टहलने लगी।

उसका भाई खड़ा-खड़ा उसकी तरफ देखता रहा और यह देखकर कि वह खत पढ़ चुकी है, बुदबुदा-सा उठा, ‘मुरली के मोजे। और ममी ने कहा है...।’

मास्टरनी ने जैसे चाकू से काटा, ‘और पापा कैसे हैं?’

टुटू ने भाँड़ों-सा मुँह बनाकर कहा, ‘वैसे ही।’

पापा रोगी, परित्यक्त, उपेक्षित - उसे कभी न लिखते थे और इसलिए उससे कुछ माँगते भी न थे।

‘तुम क्या करते हो?’

‘मैं! मैं रोज सबेरे-शाम पादरी तिवाड़ी के साथ काम करता हूँ। ममी जान ले लें, अगर मैं काम न करूँ। मुरली और ममी झमकती फिरती हैं।’

‘तुम मर्द हो।’ उसकी बहिन ने जैसे स्वप्न में कहा और वह फिर वैसे ही टहलने लगी।

‘मैं दो साल में पादड़ी हो… जाऊँगा,’ टुटू ने कुछ गर्व और कुछ दिल्लगी में कहा।

कुछ देर वह दोनों चुप रहें। मास्टरनी ने एक सन्दूक पर बैठकर जल्दी-जल्दी बुनना शुरू किया। बीच-बीच में एक अजीब और कड़वी मुस्कान उसके पीले और दागदार होंठों पर छा जाती थी।

टुटू ऐन उसी वक्त अपने चारों ओर के गन्दे कमरे की टूटी कुर्सियों और मैले तकिये की तरफ देखकर बार-बार सहम-सा जाता था।

‘यह क्या! मुरली की स्टाकिंग है।’ उसने अज्ञात भय से भरे हुए मन से कहा।

‘देखते नहीं हो।’ और मास्टरनी भौंक-सी उठी।

जब से वह यहाँ आया था, टुटू का दिल भीगते हुए कम्बल की तरह हर मिनट भारी होता जा रहा था। वह अपनी बहिन, अपने घर के बारे में इस तरह सोच रहा था, जैसे दूरबीन से वह नए नक्षत्र देख रहा हो।

खिड़कियाँ बिलकुल अन्धी हो रही थीं। मैले और ऊनी बादल जैसे ठीक धरती पर ही आ जमे थे।

किसी के पैरों को जीने पर शोर हुआ। दो छोटी-छोटी लड़कियाँ हाथ पकड़े हुए अन्दर आर्इं। वह गबरुन की ऊँचे-ऊँचे फ्रॉकें पहने थीं, और उनके चेहरों पर किसानों की-सी झुलस थी।

उनमें से बड़ी लड़की ने खाटपर एक मैली तामचीनी की प्लेट रख दी। उस पर एक लाल रूमाल पड़ा था। फिर अपनी छोटी बहिन का हाथ पकड़कर वह खड़ी हो गयी।

‘तुम क्या प्लेट चाहती हो?’ मास्टरनी ने बिला सिर उठाए पूछा। दोनों लड़कियों ने एक साथ सिर हिलाकर कहा, ‘हाँ।’

उसने उठकर उसमें से चार अंडे और अध-पके टमाटर और एक सस्ता पीतल का ब्रूच निकाल लिया।

'अपने बाप से कहना कि टीचर ने कहा है - हाँ?' और उसने खड़े होकर फिर दोनों हाथ बगलों में भींच लिये।

लड़कियाँ चुपचाप, जैसे आई थीं, चली गईं।

टुटू उनको बराबर एक विचित्र दिलचस्पी से देखता रहा। उनके जाने पर वह उठकर पूरा-पूरा खिड़की की तरफ मुँह कर बोला, 'तुम चाय नहीं पीती, लूसी बहिन।'

मास्टरनी एकाएक बीच कमरे में खड़ी हो गयी।

'सुनो, यह पाँच रुपये हैं और यह मुरली का स्टाकिंग और यह ममी का सिंगारदान और कहना कि कोई मुझसे और कुछ न माँगे। सब मर जाएँ, गिरजे में जा पड़ें।'

वह पागलों की तरह दो छोटे-छोटे और सिकुड़े हाथों से रुपये, स्टाकिंग और सिंगारदान का अभिनय कर रही थी, और बोल ऐसे रही थी जैसे उसका सारा खून जम रहा हो।

मैं... मैं कहती हूँ, वह गिरजे में जा पड़ें, मिशन में मरें।'

टुटू ने बड़ी पीड़ा से कहा, 'लूसी बहन।'

लूसी ने जरा नरम होकर कमरे की उत्तरी खिड़की खोल दी। खिड़की के खुलते ही कमरे का प्रकाश पिंजरे की चिड़िया की तरह चंचल हो उठा।

'मेरे पास कुछ नहीं है - कुछ नहीं है। तुम मेरा घर झाड़ लो,' और उसने खिड़की धमाके से बन्द कर दी।

टुटू एकबारगी उस धमाके से चौंक पड़ा। पर कह कुछ भी न सका।

मास्टरनी अपने पलंग पर जाकर बैठ गई। उसके दोनों हाथ उसकी पट्टियों को जकड़े थे। आज सारी जिन्दगी के छोटे-बड़े घाव अचानक धसक गए थे। कुछ सोचने की ताब उसमें न थी। सिर्फ एक गुट्ठल-धीमा दर्द उसके सारे अस्तित्व में लहराने लगा था। और अब बाहर रिसकर जैसे उसे डुबा देना चाहता था।

टुटू ने सहसा कड़ाई से कहा, 'लूसी बहन।'

पर इसके साथ ही किसी ने बाहर से भर्राई हुई आवाज में कहा, 'टीचर, मैं आ सकता हूँ।'

टुटू उस तरफ बढ़ा। पर घृणा से दौड़ते हुए मास्टरनी ने दरवाजा आधा खोल, बाहर जा, बन्द कर लिया। टुटू ने उसकी झलक ही देखी थी। वह एक बुझे हुए चेहरे का अधेड़ किसान था - ऐसे जैसे संडे को गिरजों में टोपियाँ उतारकर भीख माँगते हैं। एक मिनट में मास्टरनी लौट आई। उसका चेहरा पहले से भी सख्त था। उसने टुटू को देखकर उधर से मुँह फेर लिया और अपने आप बुदबुदाकर कहा, "मैं ही क्यों... तुमसे कोई मुझे सरोकार नहीं–तुम लोगों से मैं पूछती हूँ...।' और वह हथेलियों को बगलों में भींचकर और तेजी से टहलने लगी।

'मैं जैसे जिन्दा दफना दी गयी हूँ। पर मुझे कब्र की शान्ति तो दे दो।' वह वाकई हाथ फैलाकर शान्ति माँग रही थी।

टुटू गुमसुम बैठा हुआ रोशनी को घूर रहा था। सहसा उसने टुटू का हाथ पकड़ लिया।

'जाओ, सोओ।'

टुटू ने आज्ञा का पालन किया। लेकिन जब वह लेट गया तो मैली और सीली दीवार की तरफ मुँह करके रो उठा। पहले तो धीरे-धीरे और फिर जोर-जोर से।

मास्टरनी वैसे ही टहल रही थी। फिर चूर होकर उसी चारपाई पर गिर पड़ी। टुटू आखिर चुप हो रहा। कमरे में सन्नाटा छा गया था।

केवल दूर-दूर पर रात के पोर वो - पहरेदारों... के विचित्र स्वर चारों तरफ पहाड़ों से टकराकर इस कमरे में गिर-गिर पड़ते थे।

('चकल्लस', 9 मई, 1938)